AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के 'आभा और मोती' उपन्यास की नारी चेतना

डॉ. श्याम पाल मौर्य,
प्रभारी एवं एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग,
बरेली कॉलेज, बरेली, उत्तर प्रदेश, भारत

शोध सार

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'आभा' उपन्यास में आभा के यथार्थ चरित्र के माध्यम से नारी के भटकाव, उसके कारण और पत्नित्व तथा मातृत्व की महत्ता को, जिनसे वह पतित होने से बच जाती है, को बड़े ही प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। शास्त्री जी को आभा के आत्मदीप्त स्त्रीत्व को अभिव्यक्त करने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। लेखक ने कहीं–कहीं पात्र पर आदर्श–भावना आरोपित की है जो उनके उद्देश्य के साधन के रूप में प्रयुक्त हुई है। उपन्यासकार 'मोती' के माध्यम से पाठकों के सामने एक अद्भुत विचार एवं दर्शन प्रस्तुत करते हैं और देशभक्ति, पाप–पुण्य और अपराध आदि की सर्वथा नवीन व्याख्या कर मोती के पात्र को आदर्श रूप में प्रस्तुत करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। शास्त्री जी के इस उपन्यास में नारी चेतना का आदर्शोन्मुख यथार्थवादी स्वरूप अभिव्यक्त होता है। यहाँ नारी पात्रों के माध्यम से मौलिक अधिकारों से वंचित समाज या व्यक्ति के आदर्श परायण विद्रोह की सहज छवि को दर्शाया गया है।

मुख्य शब्द

चतुरसेन शास्त्री, आभा, मोती, नारी–भटकाव, चेतना, आत्मदीप्त स्त्रीत्व।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री प्राकृतवादी उपन्यासकार माने जाते हैं। प्राकृतवाद के सम्बन्ध में डॉ. रामचन्द्र तिवारी कहते हैं– प्राकृतवाद अपने मूल रूप में एक जीवन दर्शन है। प्रकृतवादी मानव जीवन को वैज्ञानिक ढंग से जानने और समझने का प्रयत्न करता है। वैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य पशु है। वह पशुओं के समान वातावरण और परिस्थिति और अचेतन मन से परिचालित होता है। काम और भूख मनुष्य की सहज वृत्तियाँ हैं। उसके अनेक कार्यकलाप इन्हीं वृत्तियों से परिचालित होते हैं। मनुष्य का प्रत्यक्ष व्यवहार, उसको किसी न किसी आन्तरिक मान्त्रिकता का परिणाम है या बाह्य विवशता का। इन दोनों को वैज्ञानिक जैसी तटस्थता से उद्घाटित करना साहित्यकार का धर्म है। ''जीवन में जिसे विद्रूप और कुत्सित कहा जाता है, वह सहज और वैज्ञानिक भी है।''[1], किन्तु उनके सभी उपन्यासों को प्राकृतवादी नहीं कहना चाहिए। तिवारीजी के ही शब्दों में ''अतीत के रहस्यलोक की रचना करके शास्त्रीजी उस लोक में स्त्री–पुरुष के यौन सम्बन्धों का स्वच्छंन्द चित्र प्रस्तुत करते है। सम्भवतः यौन–चित्रों की बहुलता के कारण ही इनकी गणना प्राकृतवादी उपन्यासकारों में की गयी है।''[2], सामान्य मनुष्य और स्त्री इतनी सरलता से अपनी मूल प्रवृत्तियों के कठिन बन्धन का अतिक्रमण नहीं कर सकते। जीवन के चरम लक्ष्य की साधना के संकल्प को लेकर तप करने वालों को भी इस प्रकृतिज यथार्थ का सामना करना पड़ता है। हितोपदेश में भी सहज स्वीकार किया गया है:

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्निराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ।।[3],

जीवन की सहज भावभूमि पर इस प्राकृतिक बाधा का संघर्ष पार करके के ही कोई उन्नत हो पाता है।

श्रीमद्भागवत में भी ययाति प्रसंग में इस सत्य का उद्घाटन किया है।[4], तुलसीदास भी इस यथार्थ से सावधान करते हैं।

"बुझै न काम–अगिनि तुलसी कहुँ, बिषयभोग बहु घी ते।"[5],

गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण कहते हैंः

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।[6],

हिंदी का श्रीकृष्ण भक्तिकाव्य भगवद्प्राप्ति हेतु काम की वृत्तियों के प्रेमाभक्ति द्वारा उन्नयन का निर्देश देता है। गोस्वामी तुलसी दास रामचरितमानस के उत्तर काण्ड में स्वीकार करते हैंः

बिनु संतोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।।

इस प्रकार मानव मात्र को इस मूल प्रकृति जन्य सामाजिक यथार्थ का यथेष्ट बोध अत्यावश्यक है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने भी मनुष्य जीवन की इस सच्चाई को अपने उपन्यासों में कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने का स्तुत्य प्रयास किया है। उनकी उर्वर कल्पना शक्ति ने उनके 'आभा और मोती' उपन्यास में जीवन के स्वाभाविक चित्र की जो छवि अंकित की है वह सन्धान का मौलिक उद्घाटन कर सकती है। उनके स्तुत्य कलात्मक उपन्यास का तथ्य–विश्लेषण कर उपयुक्त नवनीत प्राप्ति की यह विनम्र चेष्टा है।

आचार्य जी के लघु उपन्यासों में आभा का विशिष्ट स्थान है। नारी भावनाओं का इसमें इतना सुंदर चित्रण है कि पाठकों को लगता है मानो आभा उनके सामने बैठी स्वयं अपनी कहानी कह रही है। वह सुसंस्कृत और उच्चशिक्षिता नारी होते हुए भी पति के मित्र के प्रति प्रणय भावना रखती है और प्रणय भावनावश ही एक दिन पतिगृह त्याग कर मित्र के साथ चल देती है। परन्तु बिल्कुल निर्बन्ध और स्वतंत्र रहने पर भी वह मित्र के प्रति आत्मसमर्पण नहीं कर पायी। नारी के उच्च आदर्शों ने उसे संयमित रखा और दूषित नहीं होने दिया।

एक दिन उसे अपनी गर्भावस्था का भास हुआ। मित्र को जब यह ज्ञात हुआ तो वह बड़ा चिंतित और व्यथित हुआ। परन्तु आभा तो अपनी प्रतिष्ठा से ओत प्रोत है। वह मित्र को समझाती है कि यद्यपि हम साथ साथ रहते हैं फिर भी पूरी तरह पवित्र है। समय आने पर उसे प्रसव पीड़ा होती है। मित्र अपना कर्तव्य निश्चय कर उसके पति के पास दौड़ा जाता है और कहता है– ''अनिल शीघ्र चलो। भाभी को प्रसव पीड़ा हो रही है।'' पति का सन्तर्द्वंद्व और मनोमालिन्य दूर हो जाता है और वह अपनी पत्नी आभा और नवजात पुत्र को साथ–लाकर अपनी खंडित गृहस्थी फिर से बसाकर सुखी हो जाता है।

इस तरह आचार्य ने आभा के माध्यम से नारी के भटकाव,उसके कारण और पत्नीत्व तथा मातृत्व की महत्ता को जिससे वह पतित होने से बच जाती है, को बड़े ही प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है।

पात्रों को बहुत ही आकर्षक चरित्र के रूप में उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है। आभा–आदर्श नारी पात्र है। वह भटकती है किन्तु यह भटकाव क्षणिक होता है वह सम्भल जाती है और अपने चरित्र, पतिव्रत धर्म, स्त्रीत्व सभी की रक्षा कर पाने में सफल होती है। रमेश, अपने मित्र के साथ विश्वासघात करता है किन्तु वह भी जल्दी ही सम्भल जाता है और अपना कर्तव्य निश्चित कर लेता है तथा प्रसव के समय अनिल को आभा के पास बुला लाता है। उसे अपने कृत्य पर पछतावा होता है। अन्त में आभा के आत्मदीप्त स्त्रीत्व को अभिव्यक्त करने में उपन्यासकार सफलता प्राप्त करता है। कहीं कहीं पात्र पर आदर्श, भावना आरोपित सी प्रतीत जरूर होती है पर वह लेखन के उद्देश्य के साधन के रूप में ही प्रयुक्त हुई है।

'मोती' उपन्यास में वर्णित वेश्या 'जोहरा' कलकत्ते की एक अज्ञात कुलशील बाला है। वेश्यापन उसे मां से विरासत में मिला है किन्तु वह अन्य वेश्याओं से भिन्न है उसकी आंखें किसी विशिष्ट पुरुष की तलाश में है। उसके मन में पति पत्नी के सुखी संसार में रहने की आकांक्षा है इसलिए उसके यहां हर कोई नहीं आ सकता। वह जीवन

में केवल दो व्यक्तियों को अपनाती है, प्रेमी के रूप में क्रांतिकारी युवक हंसराज को और सरपरस्त के रूप में नवाब नियाज अहमद को। एक दिन हंसराज से उसकी भेंट अकस्मात अपने कोठे पर हो जाती है और उससे वह प्रेम कर बैठती है। उसे पता नहीं कि हंसराज क्रांतिकारी दल का सदस्य है और केवल पुलिस की दृष्टि से बचने के लिए उसके पास आता है। इसी बीच में नबाब के सम्पर्क में 'दिल्ली' आने पर उसका जीवनक्रम बदल जाता है। उसका भाई मोती अद्‌भुत प्रकृति का है, स्वच्छंद युवक है। वह दिन भर पार्कों में बैठा कुछ सोचता रहता है और एक दिन उसकी भेट हंसराज से हो जाती है। वह क्रांतिकारी है। मोती का विचार है कि देश, समाज आदि की संकीर्णता बेमानी है, सारा विश्व एक है। पर वाइसराय की ट्रेन बम से उड़ाने की नाकाम कोशिश के बाद उसकी भेंट मोती से हो जाती है। मोती उसे नवाब की हवेली ले आता है और जोहरा के कमरे में दासी के वेश में छुपा देता है और खुद ट्रेन उड़ाने का आरोप स्वीकार कर हंसराज को बचाने की कोशिश करता है। हंसराज को यह स्वीकार नहीं होता है और वह अंत में मोती को मुक्त कर देता है तथा नवाब उसकी शादी अपनी लड़की नीलम से कर देते हैं।

उपन्यास में मोती के माध्यम से आचार्य चतुरसेन एक अद्‌भुत विचार एवं दर्शन पाठकों के सामने प्रस्तुत करते है और देशभक्ति, पाप, पुण्य, अपराध आदि की एकदम नवीन व्याख्या कर मोती के पात्र को आदर्श रूप में प्रस्तुत का देते हैं। उपन्यासकार 'मोती' उपन्यास में स्पष्टतः एक प्रश्न उठाते हैं कि यदि अपराधी और खूनी को मौत की सजा दी जाती है तो उसे मारने वाला भी तो उतना ही दंड का भागी होना चाहिए?

इस तरह उपन्यासकार 'आभा' और 'मोती' दोनों उपन्यासों में 'आभा' और 'मोती' नामक दोनों विलक्षण पात्रों के माध्यम से एक नई दृष्टि एक नई प्रस्तुति करते हैं और विचार करने के लिए हमारे समक्ष रख देतें हैं।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के इन उपन्यासों में हम स्पष्ट और स्वाभाविक रचना दृष्टि का सप्रमाण अवलोकन करते हैं। जीवन के तारुण्य काल में इनके पात्रों के पद क्षणिक रूप में स्खलित होते हैं किन्तु समाज के नैतिक अनुशासन को सदैव अपने हृदय में सम्मान प्रदान करते हैं, धीरे–धीरे वे आदर्श की ओर उन्मुख हो जाते हैं। शास्त्रीजी के इन उपन्यासों में प्राकृत आग्रह नहीं है। स्वाभाविक रचना विकास मूर्तिमान हुआ है। डॉ. बच्चन सिंह इनके 'वैशाली की नगर वधू' के सम्बन्ध में मत व्यक्त करते हैं वैसे ही इनके इन उपन्यासों के सम्बंध में तथ्य प्राप्त होते हैं। वे स्वीकार करते हैं कि इनमें व्यक्ति स्वातंर्त्य की समस्या उठायी गयी है। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं मौलिक अधिकारों से वंचित व्यक्ति हो या समाज, उसे विद्रोह के रास्ते जाना ही होगा।[7]

किसी शक्तिशाली दबाव में आकर व्यक्ति जीवन की अज्ञात जटिलताओं का अनुमान कर अपनी वर्तमान और भविष्यत की मंगल इच्छाओं को अपने अन्दर में ही भले दफन कर दें किन्तु आत्मा में यह सर्गेच्छा नित्य उछाल मारती रहती है। अवसर पाकर वह पुनः जीवित हो उठती है। कामायनी के श्रद्धा सर्ग में भी प्रसाद इसी सत्य को उद्‌घाटित करते हैः

दुःख के डर से तुम अज्ञात
जटिलताओं का कर अनुमान।
काम से झिझक रहे हो आज,
भविष्यत से बन कर अनजान।।
कर रही लीलामय आनन्द,
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त
विश्व का उत्मीलन अभिराम
इसी में सब होते अनुरक्त।
काम मंगल से मंडित श्रेय
सर्ग इच्छा है परिणाम।
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल
बनाते हो असफल भावधाम।।

निश्चय ही मानव पुरुषार्थ का चरम लक्ष्य आत्मिक आदर्श है।

किसी रचना–शिल्पी की लेखनी का सर्वोच्च अवदान यही है कि दैहिक और ऐहिक सीमा रेखा में बंधे जीव को नित्य मुक्त आसन पर विराजमान कर सके, उसे कृतकृत्य कर सके। शास्त्री जी अपने इस उद्देश्य में सफल हुए हैं।असंदिग्ध रूप से साहित्य की दिशा कोई हो, जो देह और आत्मा के मध्य की खाई को पाट सके, वह श्रेष्ठ कला है। 'उर्वशी' के तीसरे अंक में दिनकर जी ने सुन्दर अभिव्यक्ति दी हैः

मध्यान्तर में देह और आत्मा के जो खाई है,

अनुल्लंघय वह नहीं, प्रभा के पुल से संयोजित है। अतिक्रमण इसलिए पार कर उस सुवर्ण से तुक के। उद्भासित हो सकें, भूतरोत्तर जग की आभा से।

सुने अशब्दित वे विचार जिनमें सब ज्ञान भरा है,
और चुने गोपन भेदों को, जो समाधि– कानन में
काम द्रुम से कुसुम–सदृश नीरव, अशब्द झरते हैं।[8]

निष्कर्ष

अन्ततः हम कह सकते हैं कि आचार्य चतुरसेन के इन उपन्यासों की चेतना जीवन के यथार्थ की गर्म रेत से गुजरती हुई आदर्श के उत्तुंग शिखर तक स्वाभाविक रूप से उत्कर्ष तक पहुँची है। यद्यपि वे गाँधीवादी विचारधारा से प्रेरित थे किन्तु उनके उपन्यासों की नारी चेतना जीवन धरती के स्वाभाविक समतल कभी नही छोड़ती। साहित्य के सद्–उद्देश्य के स्वाभाविक क्रम में प्रवाहित होती है।

सन्दर्भ सूची

1. तिवारी रामचंद्र, हिंदी का गद्य साहित्य – पृष्ठ– १७
2. वही– पृष्ठ– १७
3. हितोपदेश – २५
4. महाभारत–आदि पर्व
5. श्रीमद् भगवद्गीता–१६.२१
6. विनय पत्रिका– ४
7. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास पृष्ठ–३८५
8. दिनकर–श्उर्वशीश, तृतीय अंक, पृष्ठ–५६

––==00==––